

हिंदी कविताओं में आदिवासी विमर्श

डॉ. ज्योति बाला

शोध पत्र संस्कृत अध्यापिका राजकीयकन्या विद्यालय पाल्हावास (हरियाणा)

प्रस्तावना

आज समाज का प्रत्येक वर्ग अपने अधिकारों को भली-भाँति समझने लगा है, यदि कोई नहीं समझ पा रहा है तो वह है आदिवासी वर्ग। जो कि साहित्य विमर्श का एक ज्वलंत मुद्दा है। आज आदिवासी समाज हाशिए से केन्द्र की ओर जा रहा है। आदिवासी-विमर्श का मतलब आदिवासियों के सवालों को उठाना तथा उनके हल के लिए विचार-विमर्श करना है। कुछ राजनीतिक लोग उनके हथियार उठाने को उनका विमर्श कहते हैं, जो कि वास्तविकता नहीं है। उनका विमर्श तो उनकी सामाजिक सस्थाओं और उनकी अपनी लोक मान्यताओं और भाषाओं में देखा जा सकता है। वास्तविक आदिवासी चिंतन एवं संघर्ष तो उनमें सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक जागरण उत्पन्न करता है।

हिन्दी कथा-साहित्य देश की इस बदलती हुई स्थिति के प्रति जागरूक रहा है। आजादी के बाद के उपन्यासों में स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय रूप ग्रहण करने से लेकर इक्कीसवीं सदी के अंत तक के व्यापक स्त्रीविमर्श, दलित विमर्श और अब आदिवासी चिन्तन जैसे अछूते संदर्भों का बहुत ही विश्वसनीय अंकन हुआ है। मधुरेश, रोहिणी अग्रवाल, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मैत्रेयी पुष्पा, राजेन्द्र यादव, यश मालवीय, पंकज मिश्र, शानी इत्यादि ऐसे समकालीन रचनाकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में भारतीय अनछुए विषयों को खासकर आदिवासी चिंतन को बखूबी दिखाया है।

आदिवासी विमर्श आज आधुनिक भारतीय राष्ट्र के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न बनकर खड़ा हुआ है। ये प्रश्न आज बौद्धिक हलकों को गंभीर विचार मंथन के लिए उद्वेलित किए हुए है। निस्संदेह एक सीमा तक इसका श्रेय माओवादियों को दिया जाना चाहिए। उन्होंने अपने सशस्त्र संघर्ष से भारतीय राजसत्ता को चुनौती दी है। उनका केंद्रीय आधार भले छत्तीसगढ़ के घने जंगलों में हो और उनकी सघन गतिविधियों के दायरे में देश के करीब साठ अन्य जिले ही हों, लेकिन वहाँ जारी हिंसा और प्रतिहिंसा की धमक सारे देश में है।

फेलिक्स पैडेल ने अंग्रेजों के इस दावे का जिक्र किया है कि उन्होंने 'कोंड' आदिवासियों में बलि की परंपरा खत्म की। इसके लिए कुछ दस्तावेजों का हवाला दिया है। इसके बाद बलि की धारणाओं पर सवाल उठाए हैं। पहले कहा है कि बलि की धारणा सिर्फ आदिवासियों में नहीं रही। यह हिंदू और ईसाई परंपराओं में भी उसी हद तक रही है और उसके बाद सभ्यता की यात्रा का जिक्र करते हुए कहा है कि इसमें कोई बहुत बड़ी गड़बड़ी हो गई है। आदिवासी विमर्शकार राजाराम भादू ने भी कहा है कि "आदिवासी साहित्य के उद्भव और परिप्रेक्ष्य निर्माण में मराठी और दलित साहित्य के संबन्ध को जोड़कर रखा गया है जो सही भी है, लेकिन आदिवासी अस्मिता और उनकी संघर्ष-धर्मी चेतना के विकास और प्रतिरोध संगठनों के निर्माण में नक्सलवादी आंदोलन की प्रेरणा प्रयासों को वहाँ लगभग नजरअंदाज कर दिया गया है। जबकि तेलंगाना तेषागा आन्दोलन से ही आदिवासी स्त्री पुरुषों की गोलबंदी आरम्भ हो गई थी। यह प्रक्रिया नक्सलवादी श्री काकुलम दण्डकरण्यं और भोजपुर में आकर परवान चढ़ी और भयंकर दमन और उत्पीड़न के बावजूद आज भी आदिवासी अंचलों में फैलती जा रही है।" 1.

स्त्री को देह के साथ जोड़कर देखा जाता है। आज भारत में आदिवासी स्त्री के हित में किए गए आंदोलन भी इस स्थिति को बदल पाने में सक्षम नहीं है। हाल ही में प्रकाशित 'स्टेटस ऑफ वुमन इन ट्राइबल अरुणाचल' नामक रिपोर्ट में कहा है कि

राज्य में आज भी आदिवासी बाल विवाह, बलात्कार, घरेलू हिंसा, बहुविवाह, पैतृक सम्पत्ति में अधिकार नहीं मिलना जैसे मामले सामने आ रहे हैं। उड़ीसा में तो भूख, लाचारी और आर्थिक संकट के समय आदिवासी अपनी औरतों को या तो बेच देते या गिरवी रख देते हैं। झारखण्ड में डायन बताकर आदिवासी स्त्रियों की हत्या का सिलसिला बेरोकटोक जारी है।

एक संताल आदिवासी परिवार में जन्मी निर्मला पुतुल इस आदिवासी स्त्री के प्रति एकाग्रचित भाव से खड़ी है। जिसके मन की गहराइयों को भारत के महानगरों में रहने वाला कवि जुबान नहीं दे सकता। उनकी कविता आपबीती की भाषा है, स्त्री विमर्श की नयी परिभाषा है। आपने आदिवासी स्त्रियों की आत्मा को भावनात्मक श्रम के साथ उनके उपेक्षित हृदयों को और उसमें सुलगते प्रश्नों को शब्दों के माध्यम से वाणी देने का प्रयत्न किया है। जी तोड़ मेहनत कर अपना घर चलाती आदिवासी स्त्री अपने हक की बात नहीं कर सकती क्योंकि हक जताना सिर्फ पुरुषों का अधिकार है। कवयित्री जानती है इसलिए कहती है -

"हक की बात न करो मेरी बहन

मत माँगो पिता की सम्पत्ति पर अधिकार

जिक्र मत करो पत्थरों और जंगलों की अवैध कटाई का

सूदखोरों और ग्रामीण डॉक्टरों के लूट की चर्चा न करो बहन

भरी पंचायत में डायन करार कर दण्डित की जाओगी।"²

भारतीय आदिवासी समुदायों की सामाजिक और आर्थिक समस्याएं मुख्य समाज से भिन्न हैं। प्रकृति पर आश्रित आदिम लोगों की मानव निर्मित समस्याएं जटिल व बहुरूपी हैं। आदिवासी संदर्भ में विकास की अवधारणा चिंता का विषय हो सकती है। श्यामाचरण शुक्ल के मतानुसार विकास करते देशों में बड़े-बड़े वंचित समूह होते हैं जिनका विकास प्रक्रिया में कोई लाभ नहीं होता है और सम्पूर्ण विकास एक बड़े वर्ग तक ही सीमित होकर रह जाता है। आज वर्तमान जीवन में आदिवासी अपनी पहचान तेजी से खो रहे हैं। सांस्कृतिक सामाजिक और राजनीतिक संक्रमण होने से आदिवासी समुदायों में सामूहिक भावना, उदारता और सहयोग के बजाय व्यक्तिवादिता, द्वेष और ईर्ष्या घर करने लगी है। सांस्कृतिक संक्रमण से स्त्री का समतावादी रूप खण्डित होने लगा है। आदिवासी समाज का एक सराहनीय पक्ष है विधवा विवाह दहेज प्रथा का भार नहीं, लड़की होने पर प्रसन्नता जाहिर करना, स्त्री पुरुष सम्बन्ध में परिवार के कई आयाम है तथा सामाजिक रूप से स्वतंत्र आदिवासी औरत के कई रूप देखे जा सकते हैं। पुरुष के साथ साथ श्रम करने वाली आदिवासी औरत तन ढकने और पेट भरने की जो जद्दोजहद करती है, वहीं अपना तन बेचने को मजबूर हो जाती है।

रमणिका गुप्ता आदिवासियों की आर्थिक स्थिति का विवेचन करते हुए लिखती हैं, "जंगल माफिया कीमती पेड़ उससे सस्ते दामों पर खरीदकर, ऊँचे दामों पर बेचता है और करोड़पति बन जाता है। पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरता है या जेल जाता है। सरकार की ऐसी ही नीतियों के कारण आदिवासी जमीन के मालिक बनने के बजाए पहले मजदूर बने फिर बंधुआ मजदूर।"³ कई बार तो यह होता है कि कई सामाजिक संस्थाएँ जो आदिवासी समाज के हित में कार्य करती हैं। उनकी नियत में भी खोट होती है। समाज सेवा करने निकले समाजसेवी कुछ ग्रामीण भागों में कार्य

करने वाले अफसर, ठेकेदार, बिचौलिये आदिवासी स्त्री का शोषण करने से नहीं चूकते। आदिवासी स्त्री भोग्या बन कर रह गई है। निरक्षरता, डर तथा इनके भोलेपन का फ़ायदा उठाते जंगल के सिपाही तथा इनके ठेकेदारों के लिए वाहरु सोनवणे लिखते हैं –

"एक ऐसी चीज़
जिसे घाट में, बाट में
जहाँ मिले थाम लो
जब जी चाहे अंग लगा लो
पूरी हवस तो त्याग दो
न चीख न पुकारा।"⁴

स्त्री की सामाजिक स्थिति के साथ-साथ आर्थिक स्थिति का सजीव वर्णन भी आदिवासी कविताओं के माध्यम से हमें देखने को मिलता है। रोटी इन आदिवासियों के लिए शायद पहला और आखरी प्रश्न है। आत्मसजग, आत्मचेतना की भावना को जागृत कर शोषण रूपी अंधकार से बाहर निकलकर सूर्य की ओर मुख अर्थात् अँधेरे से प्रकाश की ओर कदम बढ़ाते हुए एकजुट होकर अपने अधिकार बोध, स्वतंत्रता, समानता की भावना को विकसित करें। जयप्रकाश कर्दम की कविताओं में सामाजिक शोषण के विरुद्ध आक्रमक स्वर देखने को मिलता है –

"मेरे ऊपर होने लगे
जुल्म और ज्यादतियों का जोर
गवाह है इतिहास को रौंदा रहा है,
हमेशा से अहिंसा को हिंसा का अट्टहास
लेकिन अब फड़कने लगी हैं मेरी भुजाएँ
और कुलबुलाने लगे हैं
फावड़ा, कुल्हाड़ी और हथौड़ा पकड़े मेरे हाथ,
काट फेंकने को
उन हाथों को जिन्होंने बरसाये हैं
अनगिनत कोड़े मेरी नंगी पीठ पर।"⁵

गांधीजी ने कहा भारत गाँवों का देश है। उसकी सभ्यता गाँवों और जंगलों में विकसित हुई है। आज प्राकृतिक संसाधनों पर से आदिवासियों के मालिकाना हक समाप्त करने में हम लगे हैं। गैट समझौता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति, पेटेंट जैसे कानूनी अधिकार इस भूमंडलीकरण के युग में आदिवासियों को गुलाम बनाने का कार्य कर रहे हैं। आज भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद की इस अंधी दौड़ में हम अपने देश के मूल निवासियों को इज़्जतदार ज़िंदगी नहीं दे सकते तो हमारी इक्कीसवीं सदी की हर प्रगति बेकार है। जब तक हम इस देश की जननी को वेश्या बनानेवाली मनोवृत्ति को नहीं बदल पाएँगे। सामूहिक बलात्कार जैसी घटनाओं को नहीं रोक पाएँगे और स्त्री प्रताड़ना का यह दौर इस देश में नहीं थमेगा, हमारी चाँद पर पहुँच बेकार है।

आर्थिक विपन्नता और सामाजिक विषमता का चित्र हम डॉ. धर्मवीर की कविता में देखते हैं -

"शोषण की अमरबेल, दमन की महागाथा
यातना के पिरामिड
उत्पीड़न की गंगोत्री
ऋणों के पहाड़ ब्याज के सागर,
निरक्षरों के मस्तिष्क,
महाजनों की बही रुककों पर अंगूठों की छाप
ऊटपटांग जोड़ घटा, गुणा भाग देना सब एका।"⁶

इस तरह डॉ. धर्मवीर ने सामाजिक विषमताओं के माध्यम से आर्थिक विपन्नता की विद्रूपताओं का मार्मिक अंकन कर दलितों के संघर्षमय जीवन को वाणी दी है। उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर यह विदित होता है कि आदिवासी समाज वर्तमान में भी अपने अधिकारों से वंचित है क्योंकि आदिवासी समुदाय पूर्ण रूप से शिक्षा पर अपनी पकड़ नहीं बना पाया है। शिक्षा सर्व समाज के विकास की कुंजी है इसीलिए डॉ. अंबेडकर ने आदिवासी को शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित रहो का गुरुमंत्र दिया। आदिवासी समाज गुरु मंत्र को अपनाने में नाकामयाब नज़र आता है। आदिवासी की दशा और दिशा में परिवर्तन अवश्य हुआ है, आदिवासी समुदाय के लोग आज उच्च पदों पर आसीन हैं। लेकिन फिर भी आदिवासी समाज सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है। बाबा साहेब अंबेडकर के सपने को साकार करने में आदिवासी समाज हर क्षेत्र में पकड़ बनाने के लिए प्रयास कर रहा है। यह दुर्भाग्य है इस देश का कि आजादी के ६७ वर्षों के पश्चात भी वर्ग को शोषण और हत्याकांडों की घटनाओं से प्रतिदिन गुज़रना पड़ता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि आदिवासी समाज को सामाजिक समानता दिलाने में सभी वर्ग के लोगों को अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी और भारत सरकार को भी आदिवासी समाज के लोगों का विकास करने के लिए नई नीतियाँ बनानी होंगी, जिससे आदिवासी समाज देश के विकास में ईमानदारी के साथ अपना योगदान दे सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आदिवासी कौन- सम्पादक: रमणिका गुप्ता, प्रकाशक- राधाकृष्ण, दरियागंज, नई दिल्ली, पहला संस्करण। पृ. सं 138
2. नागडे की तरह बजते शब्द - निर्मला पुतुल, पृ. 24
3. आदिवासी विकास से विस्थापन - रमणिका गुप्ता, पृ.12
4. पहाड़ हिलने लगा है - वहारु सोनवणे, पृ.19
5. आलोचना पत्रिका, संपादक - अरुण कमल, अंक-51, आलेख-दलित कविता और डॉ. अंबेडकर विचार- दर्शन- ओमप्रकाश बाल्मीकि, पृ.-123, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
6. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश बाल्मीकि,, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2001, दूसरी आवृत्ति- 2008, पृ.-7